द्वारा

डॉ आशीष सिसोदिया

लोकसाहित्य का अन्य समाज विज्ञानों से संबंध -

लोकसाहित्य लोकमानस की स्वतः उत्पन्न मौखिक व अलिखित अभिव्यक्ति है। यह लोकसमूह के द्वारा स्वीकृत, लोक आधारित ज्ञान का जीवित अभिलेख है। इसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है। यह स्वतःस्फूर्त है और किसी के द्वारा अधिरोपित नहीं है। लोकसाहित्य का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। नितांत आदिम जंगली अभिव्यक्तियों से लेकर आभिजात्य की अभिव्यक्तियाँ इनके अन्तर्गत आती हैं। डाॅ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार, ’’हमारे इतिहास में जो भी सुंदर और तेजस्वी तत्व हैं, वे लोक में कहीं न कहीं सुरक्षित हैं। हमारी कृषि, अर्थशास्त्र, ज्ञान, साहित्य, कला, भाषा, शब्दों के भंडार, जीवन के आनंदमय पर्व-उत्सव, नृत्य, संगीत, कथा-वार्ताएँ सभी कुछ भारतीय लोक में ओत-प्रोत हैं। लोक ही राष्ट्र का अमर स्वरूप है।

लोकसाहित्य सामाजिक ज्ञान और लोक व्यवहार की शिक्षा का एकमात्र साधन है। लोक साहित्य में लोक के प्राणों की अप्रतिम धारणा शक्ति होती है। इसलिए यह निरपेक्ष न होकर सामाजिक को अभिव्यक्ति करता है। लोकसाहित्य का अध्येता इतिहास, नृतत्वशास्त्र, साहित्य, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, भाषाविज्ञान, धर्म, दर्शन आदि विषयों से सामान्यतः स्वतः परिचित हो जाता है।

(1) लोक साहित्य और इतिहास - इतिहास वह सामाजिक शास्त्र है, जिसमें भूतकाल की घटनाओं तथा मानवों के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन काल का क्रमबद्ध विवेचन होता है। इतिहास भूतकाल का दर्पण है। अतीत को शताब्दियों और युगों के बाद चित्रित करने वाले इतिहासकारों को लोकगीतों, लोककथाओं से अधिक पुष्ट साक्ष्य और प्रमाण कुछ अन्यत्र नहीं मिल सकता। लोकसाहित्य के विविध रूपों में अनेक महत्वपूर्ण तथ्य एवं सत्य उपस्थित होते हैं, अतः इन्हीं के आधार पर किसी जाति, समाज, जनपद, राष्ट्र का इतिहास प्राप्त किया जा सकता है। इतिहास को संरक्षण लोकवार्ता ही देती है और इतिहास इधर-उधर बिखरी कड़ियों को एक सूत्र में पिरोती है। लोक से प्राप्त सूत्र संकेत का अनुसंधान कर इतिहासकार बहुपयोगी एवं अमूल्य सामग्री प्राप्त कर सकता है। इसी तरह लोकसाहित्य के अध्येताओं के लिए इतिहास भी पर्याप्त उपयोगी विषय है क्योंकि लोकसाहित्य इतिहास से सामग्री लेकर ही पुष्ट होता है।

(2) लोकसाहित्य और समाजशास्त्र - समाजशास्त्र के अध्ययन का मूलाधार समाज है। समाजशास्त्र समाज के संघटन, विघटन, व्यवस्था, विकास, परिवर्तन आदि के नियमों की खोज करता है। यह मानव के आचार-विचार, आहार-व्यवहार, परंपराओं-नियमों, विधानों, व्रतों, संयमों, योगों, संस्कारों, प्रथाओं आदि का अध्ययन करता है, इन्हीं का स्वाभाविक चित्रण लोकगीतों, लोककथाओं, लोकोक्तियों के द्वारा लोकसाहित्य में प्राप्त होता है। समाज का संपूर्ण यथार्थ चित्रण, उत्तरोत्तर विकसित चित्रण लोकसाहित्य में प्राप्त होता है, इसीलिए साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। शिष्ट साहित्य और लोकसाहित्य दोनों ही समाज के अभिप्रेरक तत्व हैं और एक-दूसरे के पूरक भी। इनका समानान्तर अध्ययन किए बिना सामाजिक संरचना का वैज्ञानिक बोध अधूरा रह जाता है। इनमें भी लोकसाहित्य लोकमानस का ऐसा साहित्य है जो पुराकाल से वर्तमान समय तक समाज के व्यापक हित में संलग्न है। लोकसाहित्य की विधाएँ यथा - लोकगीत, लोककथा, लोक अभिव्यक्तियाँ समाज को सदैव अनुप्राणित करती हैं तभी तो लोकसाहित्य को समाज के प्रत्यक्ष ज्ञान का महाकेंद्र कहा जाता है। समाजशास्त्र में समाज का व्यवस्थित वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

(3) लोकसाहित्य और मनोविज्ञान - लोकसाहित्य और मनोविज्ञान का घनिष्ठ संबंध है। मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। हमारे चेतन, अवचेतन, अचेतन, सहज, उपार्जित मन की प्रकृतियों, वृत्तियों, दशाओं, क्रियाओं आदि को विश्लेषित और विवेचित करने वाला विज्ञान मनोविज्ञान है। लोकसाहित्य के विद्वानों द्वारा विवेचित ’लोकमानस‘ का आधार मनोविज्ञान ही है। फ्रायड ने लोकवार्ता के मूल ’काम-प्रकृति‘ की व्याख्या मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर ही की है। फ्रायड के पूर्व जर्मन विद्वान वुंट ने तो मनोवैज्ञानिक संप्रदाय की स्थापना का आधार स्तम्भ ही लोकवार्ता को माना है। यह सच है कि जातीय मनोविज्ञान, लोकमनोविज्ञान, आदिम मनोविज्ञान की आधारभूमि लोकवार्ता ही है। इन शाखाओं के अध्ययन के लिए लोकसाहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। डाॅ० सत्येंद्र कहते हैं कि, ’’मनोविज्ञान के लिए तो लोकवार्ता साहित्य के पास विचारार्थ इतनी सामग्री है कि वह समाज के व्यष्टि और समष्टि विषयक मनोविज्ञान के स्वरूप के अंकन के लिए अनिवार्य है।

इस तरह जहाँ लोकवार्ता साहित्य मनोविज्ञान के लिए आवश्यक है वहीं मनोविज्ञान लोकसाहित्य के लिए भी कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि लोकसंस्कृति की अवधारणा और उसका स्वरूप हमारे वृहत्तर समाज की सांस्कृतिक परंपराएँ, जनआकांक्षाएँं, रुचियाँ और उनके विविध उत्सवधर्मी तत्व मनोविज्ञान के आधार पर ही निर्मित और विकसित हुए हैं और जिसकी अभिव्यक्ति लोककथा, लोककला, लोकगीत आदि रूपों में प्रकट हुई है। इस तरह लोकसाहित्य और मनोविज्ञान का संबंध स्वयं सिद्ध है।

(4) लोकसाहित्य और दर्शनशास्त्र -आज के समाज में ही नहीं बल्कि प्राचीन समाज में भी लोकसाहित्य ने अनेक आधुनिक विषयों की माता की भूमिका का निर्वाह करते हुए दर्शन और विज्ञान को जन्म दिया। दर्शन के ऐतिहासिक स्वरूप और मूल को समझने में लोकसाहित्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि धर्म के लगभग सभी अनुष्ठानों, आचारों एवं दर्शन के सिद्धांतों के मूल में लोकवार्ता और लोकबीज अवश्य होते हैं। धर्म-तत्व का लोकवार्ता से बहुत गहरा संबंध है। चाहे वह ईश्वर की अद्वैत सत्ता हो, पुनर्जन्म अथवा आवागमन का सिद्धांत हो, लोक-परलोक की अवधारणा हो, ईश्वर की साकार-निराकार रूप हो धर्म के समस्त संस्थान का मूल लोक विश्वास ही है। आज धर्म में प्रचलित विधियों का मूल रूप लोकवार्ता के द्वारा ही ठीक-ठीक समझा जा सकता है क्योंकि लोकवार्ता में मूल आदिम काल के अवशेष किसी-न-किसी रूप में सुरक्षित चले ही आते हैं। धर्म के मुख्य आधार धर्मगाथाओं के वास्तविक ज्ञान के लिए भी लोकवार्ता और लोक-साहित्य का उपयोग आज अनिवार्य हो गया है। प्रत्येक धर्म की एक विशद् ’धर्मगाथा‘ पुराण कथा अथवा ’माइथालाॅजी‘ अवश्य होती है। इस प्रकार धर्म-गाथा के द्वारा लोक-वार्ता और लोक साहित्य के स्वरूप का भी ज्ञान होता है। लोक-साहित्य के अनेक अभिप्रायों का स्वरूप धर्मगाथा से स्पष्ट हो पाता है। धर्म-शास्त्र और दर्शन के ऐतिहासिक स्वरूप और मूल को समझने के लिए भी लोकवार्ता विज्ञान ’फोकलोरिस्टिक्स‘ की आवश्यकता है। इसी प्रकार दर्शन के सिद्धांतों के मूल में लोक-बीज अवश्य मिलेगा। चाहे वह ईश्वर की अद्वैत सत्ता हो, पुनर्जन्म अथवा आवागमन का सिद्धांत हो अथवा परलोक का, आत्मा का, अथवा परमात्मा का, साकार का अथवा निराकार का, मूर्तिकला का, यज्ञ का, बलि का, धर्म के समस्त संस्थान का मूल आदिम स्थिति के विश्वासों में दिखाई पड़ेगा जो आज भी हमें लोक साहित्य में और लोकवार्ता में किसी न किसी रूप में अवशिष्ट दिखाई पड़ते हैं।

(5) लोकसाहित्य और नृविज्ञान - नृविज्ञान मानव-विज्ञान तो लोक-वार्ता से और भी घनिष्ठ रूप से संबंधित है। पहले तो लोकवार्ता को एन्थ्रापोलाॅजी का एक सहायक अंग ही स्वीकार किया जाता था, जब लोकवार्ता साहित्य की व्याख्या के लिए फ्रेजर-टेलर आदि द्वारा प्रवर्तित ’ऐन्थ्रापाॅलाजीकल संप्रदाय‘ खड़ा हुआ, तब लोकवार्ता की व्याख्या के लिए ’ऐन्थ्रापालाॅजी‘ सहायक बनकर खड़ी हुई। फलतः न तो नृविज्ञान एक कदम बिना लोकवार्ता के चल सकता है, न लोकवार्ता नृविज्ञान के बिना। नृविज्ञान शरीर और रक्त की परंपरा का अध्ययन है तो लोकवार्ता उस शरीर की वाणी का। लोकवार्ता में लोकतत्वों के वर्गों को समझने और उनके ऐतिहासिक कालांकन के लिए एन्थ्रापालाॅजी का नृविज्ञान के बिना काम नहीं चल सकता। लोकतत्वों में जातीय लोकमानस व्याप्त रहता है।